73

भारत का विधि आयोग

तिहत्तरवीं रिपोर्ट

कुछ अधिनियमों और विधि के नियमों के अधीन न्यायालय द्वारा पत्नी को दिलाए गए भरणपोषण या स्थायी निर्वाह व्यय का संदाय करने में पति द्वारा असफल होने पर अपराधिक दायित्व

15 मई, 1978

डी0ओ0नं0एफ. 2(3)/78-एल0सी0

अध्यक्ष,
भारत का विधि आयोग,
15 मई, 1978.

प्रिय मंत्री जी,

मैं इसके साथ भारत के विधि आयोग की तिहत्तरवीं रिपोर्ट भेज रहा हूँ जो कुछ अधिनियमों या विधि के नियमों के अधीन न्यायालय द्वारा पत्नी को दिलाए गए भरणपोषण या स्थायी निर्वाह व्यय का संदाय करने में पति द्वारा असफल होने पर आपराधिक दायित्व से सम्बद्ध है ।

जैसा कि रिपोर्ट के प्रथम पैरा में बताया गया है यह विषय सरकार के कहने पर विधि आयोग द्वारा विचारार्थ लिया गया । रिपोर्ट में यद्यपि ऐसी असफलता को न्यायालय अवमान के रूप में दण्डनीय बनाने के प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया गया है फिर भी यह सुझाव दिया गया है कि अपराध सम्बन्धी मूल विधि और प्रक्रियात्मक विधि में संशोधन किए जाएं ।

इस रिपोर्ट को तैयार करने में आयोग के सदस्य-सचिव श्री पी0एम0 बक्शी से मुझे जो बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई उसकी मैं लिखित रूप में सराहना करता हूँ ।

सादर

भवदीय

(एच0आर0 खन्ना)

माननीय श्री शान्ति भूषण,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली 110001.

विषय सूची

अध्याय 1 — मूल विधि और संशोधन जो उसमें करने की सिफारिश की गई है ।

अध्याय 2 — संशोधन जो दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में करने की सिफारिश की गई है ।

अध्याय 3 — संशोधन जो सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 में करने की सिफारिश की गई है ।

परिशिष्ट

परिशिष्ट 1 — हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955, धारा 24-25 के उद्धरण ।

परिशिष्ट 2 — दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973, धारा 138 से उद्धरण

परिशिष्ट 3 — कैलिफोर्निया दण्ड संहितासे उद्धरण ।

अध्याय - 1

मूल विधि और उसमें सुझाए गए संशोधन

रिपोर्ट का उद्भव ।

1.1. पूना की सामाजिक न्याय संस्था के अध्यक्ष द्वारा, विधि न्याय और कम्पनी कार्य मन्त्री को भेजे गए निम्नलिखित सुझाव विधि आयोग की राय के लिए उसे निर्देशित[1] किए गए हैं :

"भरणपोषण और संरक्षकता अधिनियम, 1956

"अनेक विवाह-विषयक विवादों में, जिनमें न्यायालय पत्नी को निर्वाह व्यय के संदाय या भरणपोषण की मंजूरी देता है, व्यावहारिक रूप में यह देखा जाता है कि कुछ समय पश्चात् पति अपनी मर्जी से ऐसे संदाय रोक देता है और प्रतितोष के लिए पत्नी को संदायों के ऐसे रोक दिए जाने का उपचार करने के उद्देश्य से अनेक विधिक कार्यवाहियां करनी पड़ती हैं । यह सिफारिश की जाती है कि वर्तमान विधि को इस प्रकार संशोधित करना चाहिए जिससे पति सक्षम न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना पत्नी को निर्वाह व्यय का संदाय या भरणपोषण न रोक सके । भरणपोषण निर्वाह व्यय का संदाय रोकने से पहले न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा अभिप्राप्त करने में असफलता को कारावास से दण्डनीय न्यायालय अवमान माननाचाहिए । विधि के उपर्युक्त

---

1 विधि न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय, विधायी विभाग, विधा0II अनुभाग डायरी नं0 2692/77 - विधि, तारीख 12-12-1977.

प्रकार के संशोधन से कष्ट पा रही उन महिलाओं को राहत दी जाएगी जो अपने पतियों से भरणपोषण प्राप्त करने से वंचित हैं ।"

भरणपोषण या निर्वाह व्यय की डिक्री या आदेश की अवज्ञा को दण्डनीय बनाना ।

1.2 आयोग ने उपर्युक्त सुझाव पर विचार किया है और वह भरणपोषण या निर्वाह व्यय का संदाय रोकने से पहले न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा अभिप्राप्त करने में असफलता को कारावास से दण्डनीय न्यायालय अवमान मानने के पक्ष में नहीं है । पर इसके साथ ही आयोग पतियों को निर्वाह व्यय या भरण पोषण के संदाय को उस दशा में भी रोक देने की प्रवृत्ति से अनभिज्ञ नहीं है जब कि उस प्रयोजन की डिक्री या आदेश उनकी पत्नियों के पक्ष में किया गया हो ।[1] ऐसी बात को रोकने की दृष्टि से आयोग यह सिफारिश करना चाहेगा कि यदि किसी न्यायालय द्वारा पत्नीके पक्ष में और पति के विरुद्ध भरण-पोषण या स्थायी निर्वाहव्यय के संदाय की डिक्री या आदेश दिया गया है और पति, ऐसी डिक्री या आदेश का पालन करने के लिए पर्याप्त साधन होते हुए भी धृष्टतापूर्वक ऐसे आदेश की अवज्ञा करता है तो वह इसमें इसके पश्चात् वर्णित दशाओं के सिवाय कठिन कारावास से जिसकी अवधि छः मास तक की हो सकती है दंडनीय होगा तथा जुर्माने का भी दायी होगा जो भरणपोषण या स्थायी निर्वाहव्यय की बकाया रकम के दुगने के बराबर होगी और किसी भी

1- "निर्वाह व्यय" के संबंध में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 25 का पार्श्व टिप्पण देखिए ।

2- आगे पैरा 1.6 देखिए ।

दशा में भरणपोषण या निर्वाहव्यय की बकाया रकम से कम नहीं होगी ।

ऐसे अपराध के लिए दण्ड कठिन कारावास होना चाहिए जिससे कि जोड़ा गया उपबंध भयोपरन उपबन्ध के रूप में कार्यान्वित हो । इसके अतिरिक्त यह अपराध अनिवार्यतः जुर्माने से दण्डनीय होना चाहिए । जुर्माने में से पत्नी को भरणपोषण या निर्वाह-व्यय के बकाया की रकम दिलाई जानी चाहिए । मूलोविध में ऐसे परिवर्तनों के कारण आगे शीघ्र ही दिये जाएंगे 2-3

विधि के संशोधन की आवश्यकता ।

1.3 सामान्यतया, न्यायालय की डिक्री या आदेश के अननुवर्तन को ऐसा मामला समझा जाता है जिसे समुचित प्रक्रियात्मक विधि में उपयुक्त रूप से निपटाया जा सकता है । किन्तु आयोग को यह प्रतीत होता है कि विचाराधीनप्रकार की डिक्रियों और आदेशों के संबंध में भिन्न प्रकार का दृष्टिकोण अपनाना विधिसम्मत होगा, क्योंकि ऐसी डिक्रियों और आदेशों के अननुवर्तन का विवाहित महिलाओं के हितों पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है । भरणपोषण के संदाय में ~~ध~~ धृष्टतापूर्ण असफलता का यह परिणाम हो सकता है कि किसी राज्य में अनेक महिलाएं जीवननिर्वाह के साधनों से वंचित हो जाएं । इसके अलावा ऐसी असफलता के परिणामस्वरूप अधिकतर मामलों में यह सम्भावना भी है कि अन्ततः वे अवारागर्दों और निराश्रितों का जीवन व्यतीत करें । यदि सामाजिक न्याय को व्यावहारिक रूप देना है तो उसे केवल सुन्दर वाक्यों में ही प्रतिष्ठापित

2- आगे पैरा 1.4

3- प्रक्रियात्मक संशोधनों के लिए आगे अध्याय 2 देखिए ।

नहीं रखना है बल्कि ऐसे सभी वस्तुतः व्यावहारिक उपाय खोजने की ओर ध्यान देना है जो इस महत्वपूर्ण विषय पर विधि के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन पर बाधा डालने वाली बुराइयों को रोकने में सहायकहों ।

उपर्युक्त सुझाव केवल हिन्दुओं को लागू विधान के निर्देश से ही दिया गया है । किन्तु विचाराधीन संशोधन के लाभदायक उद्देश्य को देखते हुए हम इसे सभी सम्प्रदायों के सदस्यों पर लागू करना उचित समझते हैं और संशोधन के विस्तार से ऐसे लोगों को जो हिन्दू न हों, अपवर्जित करने का कोई औचित्य हमें नहीं दिखाई देता ।

भरणपोषण के अधिकार से सम्बद्ध उपबन्ध ।

1.4 अनेक ऐसे उपबन्ध या विधि के नियम हैं जिनके अधीन पत्नी के पक्ष में भरणपोषण या निर्वाह व्यय का अधिकार पैदा हो सकता है -

(i) प्रथमतः यह अधिकार मूल विधि से पैदा हो सकता है चाहे वह संहिताबद्ध हो या न हो । हिन्दू दत्तक तथा भरणपोषण अधिनियम 1956 की धारा 18 इसविषय पर संहिताबद्ध विधि का अच्छा उदाहरण है । उस धारा की उपधारा (1) के अधीन उस धारा के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि हिन्दू पत्नी, चाहे वह इस अधिनियमके प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् विवाहित हो अपने जीवनकाल में अपने पति से भरणपोषण पाने की हकदार होगी । उन व्यक्तियों को, जो हिन्दू नहीं हैं, लागू स्वीय विधि के नियम भरण-पोषण पानेके पत्नी के अधिकार को स्वीकार करने की उस विधिके उदाहरण है जो संहिताबद्ध नहीं है ।

जहाँ तक मुसलमानों का सवाल है मुल्ला [1] ने इस विषय पर विधि

---

1 मुल्ला, प्रिंसिपल्स आफ मोहमडन ला (1977) पृष्ठ 300, पैरा 277, 278.

को निम्नलिखित रूप में दिया है :-

"277. पत्नी का भरणपोषण करने का पति का कर्तव्य —

पति (उस दशा के सिवाय जब कि पत्नी वैवाहिक संभोग के लिए बहुत छोटी हो) अपनी पत्नी का तब तक भरण पोषण करने के लिए आबद्ध है जब तक कि वह उसके प्रति वफादार है और उसके उचित आदेशों का पालन करती है किन्तु वह ऐसी पत्नी का जो उसके पास आने से इन्कार करती है या अन्यथा उसकी अवज्ञा करती है भरण पोषण करने के लिए उस दशा के सिवाय आबद्ध नहीं है जब कि ऐसा इन्कार या अवज्ञा तुरन्त मेहर न देने के कारण न्यायसंगत है या वह अपने पति के घर को उसकी क्रूरता के कारण छोड़ देती है । "

"276. भरण पोषण के लिए आदेश —

यदि पति किसी विधिसंमत कारण के बिना अपनी पत्नी का भरण पोषण करने में उपेक्षा करता है या उससे इन्कार करता है तो पत्नी भरण पोषण के लिए उस पर वाद चला सकती है किन्तु वह पिछले भरण पोषण के लिए डिक्री की हकदार नहीं है जब तक कि ऐसा दावा विनिर्दिष्ट करार पर आधारित न हो । यदि वह चाहे तो उपर्युक्त के स्थान पर वह दं प्रक्रिया संहिता 1908 (एवमेव), धारा 488 (एवमेव) के उपबन्धों के अधीन भरण पोषण आदेश के लिए आवेदन कर सकती है जिस पर न्यायालय पति को आदेश दे सकेगा कि वह अपनी पत्नी के भरण पोषण के लिए पांच सौ रुपए से अनाधिक की मासिक दर पर भत्ता दे । "

ईसाई पत्नी भरण पोषण के लिए अपने पति पर वाद चला सकती है[1]। यह अधिकार न्याय, साम्य और सद्विवेक पर आधारित है[2]।

1 स्टैला पक्कियम बनाम रजिया रत्नम ए.आइ.आर. 1966 मद्रास : 225, 228, पैरा 13

इस विषय पर मद्रास के एक मुकदमे[1] का निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय है -

"मद्रास सिविल कोर्ट्स एक्ट की धारा 16 द्वारा यह अधिनियमित किया गया है कि जब कभी उत्तराधिकार, विरासत, विवाह आदि से संबंधित कोई प्रश्न पैदा हो तब यदि कोई विनिर्दिष्ट नियम विद्यमान न हो तो उस प्रश्न का विनिश्चय न्यायालय द्वारा न्याय, साम्या और सद्विवेक के अनुसार करना होगा अतएव यह प्रश्न कि क्या कोई ईसाई पति अपनी पत्नी के भरण पोषण के लिए जिम्मेदार होगा, और यदि होगा तो पत्नी को ऐसा अधिकार प्रवृत्त कराने के लिए किस प्रकार की प्रक्रिया अपनानी चाहिए, अंग्रेजी विधि द्वारा अनुसरण की जाने वाली तकनीकी धारणाओं या प्रक्रिया के आधार पर नहीं बल्कि साम्य और न्याय के सिद्धान्तों पर और इस देश में प्रचलित प्रक्रिया को अपना कर विनिश्चित किया जाएगा ।"

(ii) वाद द्वारा प्रवर्तनीय इस मौलिक अधिकार के अलावा भरण पोषण या निर्वाह व्यय का आदेश न्यायालय द्वारा विवाह विषयक अनुतोष की कार्यवाहियों की समाप्ति पर ऐसे अनुतोष के लिए डिक्री प्रदान किए जाने के अनुषंगी अनुतोष के रूप में किया जा सकेगा । हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 25 ऐसा अधिकार प्रदान करने के उपबन्ध का एक उदाहरण है ; अन्य अधिनियमों[2] में भी समान उपबन्ध हैं जो हिन्दू विवाह अधिनियम के अन्तर्गत न आने वाले मामलों में विवाह विषयक अनुतोष के प्रदान से संबंधित हैं ।

1- परिशिष्ट । देखिए ।

2- विशेष विवाह अधिनियम, 1954, धारा 37
पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936, धारा 40
भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869, धारा 37.

(iii) विवाह विषयक अनुतोष की कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान भरण पोषण या निर्वाह व्यय प्रदान करने के लिए न्यायालय को सशक्त करने वाले कानूनी उपबन्ध हैं । हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24 ऐसे उपबन्ध का एक उदाहरण[1] है ; अन्य अधिनियमों में भी समान उपबन्ध हैं[2] जो हिन्दू विवाह अधिनियम के अन्तर्गत न आने वाले मामलों में विवाह विषयक अनुतोष के प्रदान से संबंधित हैं ।

( ) अन्ततः दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 में कुछ मामलों में मजिस्ट्रेटों द्वारा पत्नियों और बच्चों के लिए भरण पोषण प्रदान करने का उपबन्ध है ।

धारा 125 विशिष्ट समुदायों के व्यक्तियों तक सीमित नहीं है, और वह अपने आप में एक पूरी स्कीम है जिसमें उसके अधीन पारित किए गए मजिस्ट्रेट के आदेशों को प्रवृत्त कराने के लिए उसके अपने उपबन्धों की व्यवस्था है । यहां नीचे संहिता की धारा 125 (3) का सुसंगत प्रभाग उद्धृत किया जाता है :-

"(3) यदि कोई व्यक्ति जिसे ऐसा आदेश दिया गया हो, उस आदेश का अनुपालन करने में पर्याप्त कारण के बिना असफल रहता है तो उस आदेश के प्रत्येक अंग के लिए ऐसा कोई मजिस्ट्रेट देय रकम के ऐसी रीति से उद्गृहीत किए जाने के लिए वारंट जारी कर सकता है जैसी रीति जुर्माने उद्गृहीत करने के लिए उपबन्धित है, और उस

1- परिशिष्ट । देखिए ।

2- विशेष विवाह अधिनियम 1954, धारा 36.
पारसी विवाह और विवाह विच्छेद अधिनियम, 1936, धारा 39-
भारतीय विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869, धारा 30.

उस वारंट के निष्पादन के पश्चात् प्रत्येक मास के न चुकाए गए पूरे भत्ते या उसके किसी भाग के लिए ऐसे व्यक्ति को एक मास तक की अवधि के लिए, अथवा यदि वह उसके पूर्व चुका दिया जाता है तो चुका देने के समय तक के लिए, कारावास का दण्डादेश दे सकता है :

परन्तु इस धारा के अधीन देय किसी रकम की वसूली के लिए कोई वारण्ट तब तक जारी न किया जाएगा जब तक उस रकम को उद्गृहीत करने के लिए, उस तारीख से जिसको वह देय हुई ; एक वर्ष की अवधि के अन्दर न्यायालय से आवेदन नहीं किया गया है :

परन्तु यह और कि यदि ऐसा व्यक्ति इस शर्त पर भरण पोषण करने की प्रस्थापना करता है कि उसकी पत्नी उसके साथ रहे और वह पति के साथ रहने से इन्कार करती है तो ऐसा मजिस्ट्रेट उसके द्वारा कथित इन्कार के किन्हीं आधारों पर विचार कर सकता है और ऐसी प्रस्थापना के लिए जाने पर भी वह इस धारा के अधीन आदेश दे सकता है यदि उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा आदेश देने के लिए न्यायसंगत आधार है ।

<u>स्पष्टीकरण</u> - यदि पति ने अन्य स्त्री से विवाह कर लिया है या वह रखैल रखता है तो यह उसकी पत्नी द्वारा उसके साथ रहने से इन्कार का न्यायसंगत आधार माना जाएगा ।

दाण्डिक संस्वीकृति की आवश्यकता ।

1.5. दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के मुकाबले में उन अन्य अधिनियमों या नियमों के अधीन जिनकी हमने चर्चा की है[1]

---

1 पीछे पैरा 1.4 देखिए ।

भरण पोषण या निर्वाह व्यय की डिक्री या आदेश की पति द्वारा अवज्ञा के संबंध में कोई दाण्डिक संस्वीकृति नहीं है । हमारी राय में इस बात की आवश्यकता है कि इसके पश्चात् उल्लिखित किए जाने वाले मामलों को छोड़कर अन्य अधिनियमों या नियमों के अधीन मंजूर किए गए भरण-पोषण या स्थायी निर्वाह व्यय को भी ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत लाया जाए ।

भरण पोषण के कुछ आदेशों का अपवर्जन ।

1.6 प्रस्तावित अपराध की परिधि से हम दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 या उसकी पूर्ववर्ती (धारा 488) के अधीन न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए भरण पोषण को अपवर्जित करेंगे क्योंकि संहिता में प्रवर्तन के लिए दाण्डिक संस्वीकृति[2] सहित पर्याप्त उपबन्ध है । हम प्रस्तावित अपराध की परिधि से कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान भरण पोषण या निर्वाह व्यय के आदेशों को भी अपवर्जित करेंगे । कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान आदेश अस्थायी आदेश होते हैं, और उनके प्रवर्तन को ऐसी शक्तियों के अधीन कराए जाने के लिए छोड़ा जा सकता है जो न्यायालयों को पहले से ही प्राप्त हैं ।

---

1 पीछे पैरा 1.4 देखिए

2 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 (3); पीछे पैरा 1.4 ( ) देखिए ।

संक्षिप्त में प्रस्तावित धारा का विस्तार क्षेत्र ।

1.7 संक्षेप में पुनः यह बताना उपयुक्त होगा कि प्रस्तावित धारा इस प्रकारप्रारूपित की जानी चाहिए कि वह निम्नलिखित को लागू हो -

(क) पत्नी के लिए भरण पोषण ,

(i) जिसे हिन्दू दत्तक तथा भरण पोषण अधिनियम 1956 की धारा 18 के अधीन, या

(ii) जिसे स्वीय विधि द्वारा, जो संहिताबद्ध न हो, मान्य किए गए मौलिक अधिकार के आधार से, न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया हो ;

(ख) विवाह विषयक अनुतोष के लिए कार्यवाहियों की समाप्ति पर हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 25 के अधीन अथवा तत्समान किसी अन्य कानूनी उपबन्ध[2] के अधीन पत्नी के लिए न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया भरण पोषण या स्थायी निर्वाह व्यय, किन्तु प्रस्तावित ब धारा निम्नलिखित को लागू नहीं होनी चाहिए, अर्थात् :-

(ग) कार्यवाही के लम्बित रहने के दौरान हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अधीन अथवा तत्समान किसी अन्य कानूनी उपबन्ध[3] के अधीन मंजूर किया गया भरण पोषण या निर्वाह व्यय ;

---

1 पीछे का पैरा 1.4 (i)
2 पीछे का पैरा 1.4 ( )
3 पीछे का पैरा 1.4 (iii)

(घ) दण्डप्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 केअधीन अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1898 (अब निरस्त) की धारा 488 के अधीन मंजूर[1] किया गया भरण पोषण ।

संशोधन का सभी समुदायों के व्यक्तियों पर विस्तार ।

1.8 यद्यपि सुझाव हिन्दुओं को लागू विधान के प्रति निर्देश से किया गया है किन्तु विधि में किया गया कोई संशोधन सभी समुदायों के व्यक्तियों को लागू होना चाहिए जैसा कि पहले कहा जा चुका है ।[2]

नए उपबन्ध का स्थान ।

1.9 जहां तक नए उपबन्ध को रखने का प्रश्न है उसे भारतीय दण्ड संहिता (विवाह सम्बन्धी अपराधों के विषय में) के अध्याय 20 में यथास्थान अन्तः स्थापित किया जा सकता है क्योंकि प्रस्तावित अपराध सारतः वैवाहिक जिम्मेदारी का अतिक्रमण करने वाले कार्य से बनता है ।

तुलनात्मक स्थिति ।

1.10 यद्यपि हमें अन्य देशों के विधान में ठीक ठीक ऐसे ही उपबन्ध नहीं मिले फिर भी कैलिफोर्निया पेनल कोड की कुछ धाराएं, जो भरणपोषण के संदाय में असफलता के लिए आपराधिक दायित्व आधरोपित करती है, इस मामले से सुसंगत होंगी (ये इस रिपोर्ट के परिशिष्ट [3] में दी गई है ।

भारतीय दण्ड संहिता को संशोधित करने की सिफारिश ।

1.11 उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि ऊपर के सुझावों को समाविष्ट करने वाली एक निम्नलिखित नई धारा, धारा 498क के रूप में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498 के ठीक आगे जोड़ दी जाए तो ~~धारा~~ धारा विवाह संबंधी अपराधों के विषय क वाले अध्याय (अध्याय 20) के अन्त में है :-

---

1 पीछे का पैरा 1.4 ( )
2 पीछे का पैरा 1.3
3 इस रिपोर्ट का परिशिष्ट 3

न्यायालय द्वारा आदेश दिए जाने पर पत्नी को स्थायी निर्वाह व्यय या भरण पोषण देने में पति की असफलता ।

"498क (1) जो कोई ऐसा व्यक्ति होते हुए, जिसके खिलाफ न्यायालय ने उस द्वारा अपनी पत्नी को भरण पोषण या स्थायी निर्वाह व्यय देने की डिक्री या आदेश किया है, ऐसा डिक्री या आदेश का पालन करने के लिए अपने पास पर्याप्त साधन होने पर ऐसी डिक्री या आदेश की धृष्टतापूर्वक अवज्ञा करेगा वह, उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट मामलों के सिवाय, कठिन कारावास से जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी तथा जुर्माने से जो भरण पोषण या स्थायी निर्वाह व्यय की बकाया रकम के दुगने तक का हो सकेगा और जो किसी भी दशा में ऐसी रकम से कम नहीं होगा, दण्डनीय होगा ।

(2) जब कोई व्यक्ति इस धारा के अधीन अपराध से सिद्धदोष होगा तब न्यायालय ऐसे दिए जाने के लिए आदिष्ट जुर्माने में से उपधारा (1) में निर्दिष्ट रकम का पत्नी को संदाय किए जाने का निदेश भी देगा ।

(3) इस धारा की कोई बात निम्नलिखित की अवज्ञा को लागू नहीं होगी —

(क) दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 के अधीनपारित आदेश या उस संहिता के प्रारम्भ के पूर्व दण्ड प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 488 के अधीन पारित आदेश, अथवा

(ख) कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान भरण पोषण या निर्वाह व्यय

के संदाय के लिए आदेश ।"

उपर्युक्त संशोधन से पैदा होने वाले अनेक मामलों को निपटाने के लिए प्रक्रियात्मक विधि में कुछ संशोधन अपेक्षित होंगे । अब हम उनकी चर्चा करेंगे ।[1]

---

1 आगे के अध्याय 2-3

अध्याय 2

संशोधन जो दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में करने की सिफारिश की गई है ।

प्रक्रिया

पत्नी द्वारा परिवाद आवश्यक ।

2.1 प्रक्रिया के संबंध में हम पहले कार्यवाहियाँ आरम्भ करने के ढंग की चर्चा करेंगे । हमारी राय में यह उपयुक्त होगा कि जो अपराध सृजित करना प्रस्तावित है उसका संज्ञान करने के लिए पत्नी द्वारा परिवाद अपेक्षित हो चूंकि[1] वह अपराध मुख्यतः पत्नी के हितों को प्रभावित करनेवाला समझा जाता है और उसकी वैवाहिक प्रस्थिति से सम्बन्धित है । दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973[2] की धारा ~~189~~ 198 (1) में एक उपबन्ध मौजूद है जो ऐसे निर्बन्धन लगाता है जिनके अधीन ही भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 20 - विवाह सम्बन्धी अपराधों के विषय में - के अधीन दण्डनीय विनिर्दिष्ट अपराधों का संज्ञान किया जा सकता है । धारा 198 यह उपबन्ध करती है कि कोई न्यायालय भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 20 के अधीन दण्डनीय अपराध का संज्ञान ऐसे अपराध से व्यथित किसी व्यक्ति द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा, ~~अ~~ अन्यथा नहीं ।

2.2 हमारी यह राय है कि नए अपराध पर भी वही नियम लागू होना चाहिए ; न्यायालय सम्बद्ध अपराध का संज्ञान पत्नी[3] द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं ।

---

1 पीछे, अध्याय 1

2 परिशिष्ट 2 देखिए ।

3 पीछे, अध्याय 1.

संहिता की धारा 198(1) का लागू होना ।

2.3 नए अपराध के भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 20 क में सम्मिलित[1] किए जाने पर दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 198(1) का मुख्य उपबन्ध मूल पाठ में किसी प्रकार का संशोधन किए बिना उसे लागू हो जाएगा[2] दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 198(1) में - संज्ञान का वर्जन करने वाले उद्धरण में - निम्नलिखित उपबन्ध किया गया है :-

> "198. (1) कोई न्यायालय भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 20 के अधीन दण्डनीय अपराध का संज्ञान ऐसे अपराध से व्यथित किसी व्यक्ति द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं ।"

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 198 के संशोधन के लिए सिफारिश ।

2.4 किन्तु ऐसे मामलों के लिए भी उपबन्ध करना आवश्यक होगा जिनमें पत्नी कुछ अपरिवर्गनीय परिस्थितियों के कारण परिवाद नहीं कर सकती । इस संदर्भ में फिर से दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 198 के प्रतिनिर्देश करना उपयुक्त होगा। उस धारा को उपधारा (1) के परन्तुक के खण्ड (क) में यह उपबन्ध किया गया है कि जहां पत्नी अठारह वर्ष से कम आयु की है, अथवा जड़ या पागल है अथवा रोग या अंग शैथिल्य के कारण परिवाद करने के लिए असमर्थ है, या ऐसी स्त्री है जो स्थानीय रूढ़ियों और रीतियों के अनुसार लोगों के सामने आने के लिए विवश नहीं की जानी चाहिए, वहां उसकी ओर से कोई अन्य व्यक्ति न्यायालय की इजाजत से परिवाद कर सकता है।

---

1 पीछे, पैरा 2.1 और 2.2

2 संहिता की धारा 198 के सुसंगत प्रमाण के मूल पाठके लिए परिशिष्ट 2 देखिए ।

प्रस्तावित अपराध के लिए परिवाद के सम्बन्ध में भी ऐसी ही स्थिति होनी चाहिए ।

परिवाद करने के आशय की सूचना धारा 198(1), परन्तुक (घ) अन्तः स्थापित करना ।

2.5 प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुछ और उपबन्ध भी आवश्यक हैं । हमारी राय में, पत्नी द्वारा परिवाद करने से पूर्व, पति को डिक्री या आदेश का पालन करने का अवसर देना चाहिए । हम सिफारिश करते हैं कि प्रस्तावित नए शास्तिक उपबन्ध के अधीन परिवाद करने के लिए कोई पत्नी तबतक हकदार नहीं होगी जब तक कि उसके वैसा करने के आशय की लिखित सूचना पति को दे न दी गई हो या रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेज न दी गई हो और जब तक कम से कम एक मास की अवधि व्यतीत न हो गई हो । ऐसी सूचना में बकाया की वह रकम कथित होनी चाहिए जिसके बारे में ऐसा परिवाद किया जाना ।[1]

हमने इस प्रश्न पर भी बहुत कुछ विचार किया है कि क्या ऐसे मामले में जिसमें सूचना रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा दी जाती है एक मास की अवधि की गणना उस तारीख से की जानी चाहिए जिसकी सूचना पत्नी द्वारा डाक में डाली गई थी या उस तारीख से की जानी चाहिए जिसको सूचना पति को प्राप्त हुई या ठीक पता लिखे जाने पर डाक के सामान्य क्रम में उसे प्राप्त हो गई होती । हम समझते

---

1 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 198(1) के परन्तुक (घ) के रूप में रखा जाएगा ।

हैं कि ऐसेमामले में अवधि की गणना पश्चातवर्ती तारीख से करना न्यायसंगत और उचित होगा ।

अभियोजन के लिए समय परिसीमा ।

2.5 क अब हम समय परिसीमा के प्रश्न पर विचार करेंगे जिसके अन्दर प्रस्तावित नए शास्तिक उपबन्ध के आधीन अभियोजन चलाया जा सकता है ।[1] पति को परेशानी से बचाने के लिए हमारी राय में यह वांछनीय है कि प्रस्तावित धारा के अधीन दाण्डिक कार्यवाहियाँ व्यतिक्रम की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात् नहीं की जानी चाहिए । समान उपबन्ध के तौर पर हम दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 (3) के परन्तुक का निर्देश कर सकते हैं जिसमें अधिनियमित किया गया है कि उस धारा के अधीन देय किसी रकम की वसूली के लिए कोई वारण्ट तब तक जारी न किया जाएगा जब तक उस रकम को उद्गृहीत करने के लिए उस तारीख से जिसको वह देय हुई एक वर्ष की अवधि के अन्दर न्यायालय से आवेदन नहीं किया गया है ।

हम यह बताना चाहेंगे कि जहाँ तक दण्ड संहिता के अधीन अपराधों का संबंध है ऐसा प्रतीत होता है कि मामला दण्ड प्रक्रिया संहिता में परिसीमा से सम्बद्ध उपबन्धों के अन्तर्गत आ जाता है ।

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 468 के अधीन परिसीमा की अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात् कुछ अपराधों का संज्ञान करना वर्जित है । धारा नीचे उद्धृत की जाती है :-

---

1 पीछे, पैरा 1, 11

"468. (1) इस संहिता में अन्यत्र जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय, कोई न्यायालय उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्रवर्ग के किसी अपराध का संज्ञान परिसीमा काल की समाप्ति के पश्चात् नहीं करेगा ।

(2) परिसीमा -काल, —

(क) छह मास होगा यदि अपराध केवल जुर्माने से दण्डनीय है ;

(ख) एक वर्ष होगा यदि अपराध एक वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए कारावास से दण्डनीय है ;

(ग) तीन वर्ष होगायदि अपराध एक वर्ष से अधिक किन्तु तीन वर्ष से अनधिक की अवधि के लिएकारावास से दण्डनीय है।"[1]

धारा 469 जो परिसीमा काल के प्रारम्भ के संबंध में है, इस प्रकार है :-

"469. (1) किसी अपराधी के संबंध में परिसीमा-काल -

(क) अपराध की तारीख को प्रारम्भ होगा, या

(ख) जहां अपराध के लिए जाने की जानकारी अपराध द्वारा व्यथित व्यक्तिको या किसी पुलिस अधिकारी को नहीं है वहां उस दिन प्रारम्भ होगा जिस दिन प्रथम बार ऐसे अपराध की जानकारी ऐसे व्यक्ति या ऐसे पुलिस अधिकारी को होती है, इनमें से जो भी पहले हो, या

(ग) जहां यह ज्ञात नहीं है कि अपराध किसने किया है, वहां उस दिन प्रारम्भ होगा जिस दिन प्रथम बार अपराधी का पता अपराध द्वारा व्यथित व्यक्ति को या अपराध का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारीको चलता है, इनमें से जो भी पहले हो ।

---

1 अवधि के प्रारम्भ के लिए, दण्डप्रक्रिया संहिता 1973 की धाराएं 469-472 देखिए ।

(2) उक्त अवधि की संगणना करने में, उस दिन को छोड़ दिया जाएगा जिस दिन ऐसी अवधि की संगणना की जानी है ।"

हमारी यह राय है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध के संबंध में धारा 469 को लागू करने के प्रयोजनों के लिए संबंधित डिक्री या आदेश के अधीन संदाय करने में व्यतिक्रम की तारीख को अपराध की तारीख समझना चाहिए ।

दण्डप्रक्रिया संहिता की धारा 198 में संशोधन करने की सिफारिश ।

2.5ख उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 198 (1) में निम्नलिखित परन्तुक (घ) अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए :-

"(घ) भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध का पति के विरुद्ध परिवाद करने के लिए कोई पत्नी तब तक हकदार नहीं होगी जब तक बकाया की उस रकम को, जिसके सम्बन्ध में उसका आशय ऐसा परिवाद करना है, कथित करते हुए और वैसा करने के अपने आशय को प्रज्ञापित करते हुए लिखित सूचना पति को दे न दी गई हो या उसे रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेज न दी गई हो और जब तक यथास्थिति, उस तारीख से जिसको सूचना इस प्रकार दी गई थी या उस तारीख से जिसको ठीक पता लिखे जाने पर डाक के सामान्य क्रम में वह पति को प्राप्त हो गई होती, कम से कम एक मास की अवधि समाप्त न हो गई हो ।"

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 469 का संशोधन।

2.5ग हम यह सिफारिश भी करते हैं कि दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 469 (1) में निम्नलिखित स्पष्टीकरण अन्तः स्थापित कर दिया जाए :-

"स्पष्टीकरण - भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध के सम्बन्ध में इस धारा को लागू करने के प्रयोजनों के लिए डिक्री या आदेश के अधीन संदाय करने में व्यतिक्रम की तारीख अपराध की तारीख मानी जाएगी ।"

निक्षेप पर दोषमुक्ति- दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में धारा 257क अन्तः स्थापित करना ।

26. अपराध के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि पति द्वारा संदाय पर दाण्डिक कार्यवाहियां रोकने के लिए कोई उपबन्ध किया जाए । हम सिफारिश करते हैं कि यदि पहली सुनवाई पर या एक मास से अनधिक इतने अतिरिक्त समय के अन्दर जितना न्यायालय अनुज्ञात करे व्यतिक्रम की तारीख इतनी दर पर, यदि कोई हो, जितनी डिक्री या आदेश द्वारा नियत की गई हो अथवा उसके अभाव में बारह प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज सहित उस रकम को तथा इतने खर्च को, यदि कोई हो, जितना अनुज्ञात करना न्यायालय ठीक समझे,

पति न्यायालय में पत्नी को दे देता है या न्यायालय में निक्षिप्त कर देता है तो न्यायालय मामले में सब कार्य वाहियां रोक देगा और अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा । किन्तु यह रियायत कुछ निर्बन्धनों 2 के अधीन ही प्राप्य होगी : ऐसे निर्बन्धनों की अन्तर्वस्तु उस प्रारूप धारा से प्रकट होगी जिसकी हम इस बाबत सिफारिश कर रहे हैं । इसके अलावा प्रस्तावित उपबन्ध के अधीन न्यायालय में पत्नी को संदाय की प्रक्रिया केवल उन मामलों में अनुज्ञात की जानी चाहिए जिनमें वह स्वयम् परिवादी हो । अन्य मामलों में रकम को न्यायालय में निक्षिप्त करना होगा और वह ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं दी जानी चाहिए जिसने दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 198(1) के परन्तुक (क) के अधीन उसकी ओर से परिवाद फाइल किया हो ।

उपर्युक्त प्रस्थापनाओं को कार्यान्वित करने के लिए हम सिफारिश करते हैं कि दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में समझौता मामलों के विचारण वाले अध्याय में निम्नलिखित नई धारा, धारा सं० 257क, अन्तःस्थापित की जानी चाहिए:-

"257क. यदि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध के लिए अभियोजन में पहली सुनवाई पर या एक मास से अनधिक इतने अतिरिक्त समय के अन्दर

---

1. इस आसानी से दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 257क के रूप में रखा जा सकता है ।

2. दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम 1958 की धारा 14(2), 15(3) और 15(6) से तुलना कीजिए ।

जितना न्यायालय अनुज्ञात करे पति न्यायालय में पत्नी को निम्नलिखित का संदाय कर देता है या उसे न्यायालय में निक्षिप्त कर देता है,-

(क) वह रकम जिससे दाण्डिक कार्यवाही सम्बद्ध है,

(ख) व्यतिक्रम की तारीख से इतनी दर पर, यदि कोई हो, जितनी डिक्री या आदेश द्वारा नियत की गई हो अथवा उसके अभाव में, बारह प्रतिशत की दर पर ब्याज, और

(ग) इतना खर्च, यदि कोई हो, जितना अनुज्ञात करना न्यायालय ठीक समझे ;

तो न्यायालय मामले में आगे की सब कार्यवाहियां रोक देगा और अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा ।

परन्तु इस धारा के उपबन्ध, जहां तक वे न्यायालय में पत्नी को संदाय से सम्बद्ध हैं वहां लागू नहीं होंगे जहां दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 198 की उपधारा (1) के परन्तुक (क) के अधीन परिवाद पत्नी की ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया हो:

परन्तु यह और कि जहां डिक्री या आदेश, भरण पोषण या स्थायी निर्वाह व्यय के कालिक संदाय के लिए है वहां कोई अभियुक्त इस धारा का फायदा उठाने के लिए उस दशा में हकदार नहीं होगा जब उसने डिक्री या आदेश के अधीन देय किसी रकम के सम्बन्ध में एक बार ऐसा फायदा उठाकर उस

डिक्री या आदेश के अधीन देय हुई किसी रकम के संदाय में, यथास्थिति, तीन मास या तीन अन्य अवधियों के लिए यदि वे लगातार हों या न हों, पुनः व्यतिक्रम किया है।"

दण्ड प्रक्रिया संहिता की शमन सम्बन्धी धारा 320 के बारे में सिफारिश ।

2.7. नए अपराध का स्वरूप देखते हुए हम सिफारिश करते है कि वह न्यायालय की अनुज्ञा के बिना शमनीय होना चाहिए । शमन के बारे में उपबन्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 320 में है । उसका सम्बन्धित प्रभाग इस प्रकार है:-

"320.(1) नीचे दी गई सारणी के प्रथम दो स्तम्भों में विनिर्दिष्ट भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं के अधीन दण्डनीय अपराधों का शमन उस सारणी के तृतीय स्तम्भ में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है:-

सारणी

अपराध	भारतीय दण्ड संहिता की धारा जो लागू होती है	वह व्यक्ति जिसके द्वारा अपराध का शमन किया जा सकता है ।
जारकर्म	497	स्त्री का पति ।
विवाहिता स्त्री को आपराधिक आशय से फुसलाकर ले जाना, या लेजाना या निरुद्ध रखना ।	498	यथोक्त ।
मानहानि	500	वह व्यक्ति जिसकी मानहानि की गई है।

"(3) जब कोई अपराध इस धारा के अधीन शमनीय है तब ऐसे अपराध के दुष्प्रेरण का, अथवा ऐसे अपराध को करने के प्रयत्न का (जब ऐसा प्रयत्न स्वयम् अपराध हो) शमन उसी प्रकार से किया जा सकता है ।

(4)(क) जब वह व्यक्ति जो इस धारा के अधीन अपराध का शमन करने के लिए अन्यथा सक्षम होता, अठारह वर्ष से कम आयु का है या जड़ या पागल है तब कोई व्यक्ति जो उसकी ओर से संविदा करने के लिए सक्षम हो, न्यायालय की अनुज्ञा से, ऐसे अपराध का शमन कर सकता है ।

(ख) जब वह व्यक्ति, जो इस धारा के अधीन अपराध का शमन करने के लिए अन्यथा सक्षम होता, मर जाता है तब ऐसे व्यक्ति का, सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 में यथापरिभाषित विधिक प्रतिनिधि, न्यायालय की सम्मति से, ऐसे अपराध का शमन कर सकता है ।

- - - -

अपराध का शमन, न्यायालय की अनुज्ञा के बिना, पत्नी के कहने पर किया जा सकेगा ।

प्रस्तावित संशोधन के पश्चात् दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 320 का सम्बन्धित प्रभाग इस प्रकार होगा:-

"320(1) नीचे दी गई सारणी के प्रथम दो स्तम्भों क में विनिर्दिष्ट भारतीय दण्ड संहिता की धाराओं के अधीन दण्डनीय अपराधों का शमन उस सारणी के तृतीय स्तम्भ में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है:-

सारणी

अपराध	भारतीय दण्ड संहिता की धारा जो लागू होती है।	वह व्यक्ति जिसके द्वारा अपराध का शमन किया जा सकता है।
जारकर्म	497	स्त्री का पति
विवाहिता स्त्री को आपराधिक आशय से फुसलाकर ले जाना, या ले जाना या निरुद्ध रखना ।	498	यथोक्त
न्यायालय द्वारा आदेश दिए जाने पर पत्नी को स्थायी निर्वाह व्यय या अंतरिम पोषण देने में पति की असफलता	498क	पत्नी
मानहानि	500	वह व्यक्ति जिसकी मान-हानि की गई है।"

प्रथम अनुसूची का संशोधन ।

2.8. दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की प्रथम अनुसूची में प्रस्तावित नए अपराध[1] से सम्बद्ध एक उपयुक्त प्रविष्टि जोड़ी जानी चाहिए । अपराध असंज्ञेय, जमानतीय और किसी मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय होना चाहिए । हम सिफारिश करते हैं कि प्रथम अनुसूची को तदनुसार संशोधित करना चाहिए ।

---

1. भारतीय दण्ड संहिता, धारा 498क पीछे पैरा 1.11. देखिए ।

कार्यवाहियों के लम्बित रहने के समय का अपवर्जन।

3.2. दाण्डिक कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान पत्नी द्वारा निष्पादन के लिए आवेदन किए जाने का प्रतिषेध अन्तः स्थापित करने के लिए हमारी सिफारिश के परिणामस्वरूप यह उपबन्ध करना आवश्यक है कि ऐसे आवेदन के लिए परिसीमा काल की संगणना में उस समय को अपवर्जित किया जाए जो ऐसे लम्बित रहने पर व्यतीत हुआ हो ।

परिसीमा काल परिसीमा अधिनियम 1963 के अनुच्छेद 136 के विहित किया गया है जो इस प्रकार है:

,, 136 सिविल न्यायालय की (आज्ञापक व्यादेश अनुदत्त करने वाली डिक्री से भिन्न) किसी डिक्री या किसी आदेश के निष्पादन के लिए ।	बारह वर्ष	जब डिक्री या आदेश प्रवर्तनीय हो जाता है, अथवा जहां कि डिक्री या कोई पश्चात्वर्ती आदेश एक निश्चित तारीख को या आवर्ती कालावधियों पर किसी स्थर का संदाय करने या किसी सम्पत्ति का परिदान करने का निदेश देता है वहां जब वह संदाय या परिदान करने में व्यतिक्रम होता है जिसका निष्पादन कराने की ईप्सा है: परन्तु शाश्वत व्यादेश अनुदत्त करने वाली डिक्री के प्रवर्तन या निष्पादन के लिए आवेदन किसी परिसीमा काल के अध्यधीन नहीं होगा।''

परिसीमा अधिनियम में वर्तमान उपबन्ध लागू नहीं है ।

3.3. जहां तक सम्बन्धित दाण्डिक कार्यवाहियों में लगे समय को अपवर्जित करने का प्रश्न है परिसीमा अधिनियम 1963 के वर्तमान उपबन्ध धारा 14 और 15(1) जो विचाराधीन विषय के निकटतम है - विचाराधीन स्थिति से पूर्णतः निपटने वाले प्रतीत नहीं होते । धारा 14 सद्भावपूर्वक किसी ऐसे न्यायालय में अभियोजित की गई कार्यवाही में लगे समय के अपवर्जन के लिए उपबन्ध करता है जो अधिकारिता की त्रुटि या वैसी ही प्रकृति के अन्य हेतुक से उस ग्रहण करने में असमर्थ हो । वर्तमान मामला उस कोटि में नहीं आता । इसके अलावा धारा 15(1) निम्नलिखित उपबन्ध करती है:-

"15(1) किसी ऐसे वाद के या किसी ऐसी डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन के, जिसका संस्थित या निष्पादित किया जाना किसी व्यादेश या आदेश द्वारा रोक दिया गया हो, परिसीमा काल की संगणना में, उतना समय, जितने समय ऐसा व्यादेश या आदेश बना रहा हो, वह दिन जिस दिन वह निकाला गया या किया गया था और वह दिन जिस दिन उसका प्रत्याहरण किया गया था, अपवर्जित कर दिए जाएंगे ।"

यह उपबन्ध "व्यादेश या आदेश" के परिणामस्वरूप रोक देने तक सीमित है । यह राय हो सकती है कि "व्यादेश या आदेश" पद के अन्तर्गत वे विधायी उपबन्ध या कार्यपालन आदेश नहीं आते जो वादों या आवेदनों के संस्थित किए जाने का वर्जन करते हैं । सामान्य मत

- -

1. परिसीमा अधिनियम 1963, धारा 14 - 15.

ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि न्यायमूर्ति हालेन्ड ने कहा है[1]:-

"मैं यह नहीं समझता कि किसी ऐसे मामले में जिसमें स्पष्ट रूप से निलम्बन का उपबन्ध परिसीमा अधिनियम में या किसी विशेष अधिनियम में न किया गया हो निलम्बन के सिद्धान्त का आसरा लेना आवश्यक है या उचित विधि होगा।"

इस मत का समर्थन उस सिद्धान्त द्वारा होता है जिसे परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 9 में मान्य किया गया है, अर्थात्[2] "जहां कि एक बार समय का चलना प्रारम्भ हो जाए वहां बाद संस्थित करने या आवेदन करने की किसी भी पाश्चिक नियोग्यता या अयोग्यता से रुक नहीं सकता।"

इस बात पर भी कुछ से संदेह व्यक्त किया जा सकता है कि क्या परिसीमा अधिनियम 1963 (डिक्रियों के निष्पादन से सुभिन्न रूप में) आदेशों के निष्पादन पर लागू होता है।

ऐसी स्थिति में इस बात के लिए एक स्पष्ट उपबन्ध आवश्यक प्रतीत होता है कि पत्नी द्वारा निष्पादन के लिए आवेदन के हेतु परिसीमा काल की संगणना करने में उस समय को अपवर्जित किया जाए जो विचारण न्यायालय में सम्बद्ध दाण्डिक कार्यवाहियों में लगा हो।

---

1. महावीर प्रसाद बनाम भूपाल राम ए०आइ० आर० 1929 पी ए टी 694, 700 (एफ०बी०)।
2. परिसीमा अधिनियम 1963, धारा 9

सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 में संशोधन आदेश 21, नियम 29क का अन्तःस्थापन ।

3.4. पूर्वगामी पैराओं[1] को ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की प्रथम अनुसूची के आदेश 21 में नियम 29क के रूप में निम्नलिखित नया नियम अन्तःस्थापित किया जाए:-

"29क (1) उपनियम (2) और (3) के अधीन रहते हुए यह कि जहां भरण पोषण और स्थायी निर्वाह व्यय की डिक्री या आदेश पत्नी के पक्ष में पति के खिलाफ दिया गया है और पति उस डिक्री या आदेश की अवज्ञा का दोषी है वहां भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध के लिए परिवाद करने का पत्नी का अधिकार डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए आवेदन करने के उसके अधिकार को किसी प्रकार प्रभावित नहीं करेगा ।

(2) ऐसे किसी परिवाद के सम्बन्ध में संस्थित दाण्डिक कार्यवाही के विचारण न्यायालय में लम्बित रहने के दौरान,—

(क) पत्नी को डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए कोई आवेदन करने का हक नहीं होगा,

(ख) यदि ऐसी दाण्डिक कार्यवाहियों के चलाए जाने के पूर्व पत्नी द्वारा डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए किए गए किसी आवेदन पर, किसी न्यायालय में कार्यवाहियां लम्बित हैं तो वे कार्यवाहियां

---

1. पीछे के पैरा 3.1. से 3.3 तक ।

दाण्डिक कार्यवाहियों के जारी रहने तक निलम्बित रहेंगी किन्तु इस प्रकार नहीं कि वे निर्णीत ऋणी की सम्पत्ति की किसी भी कुर्की पर प्रभाव डाले जो उस तारीख से ठीक पूर्व अस्तित्वशील हो जिसको दाण्डिक कार्यवाहियां चलाई गई थीं ।

(3) जहां ऐसी दाण्डिक कार्यवाहियों में वसूल किए गए जुर्माने में से कोई रकम पत्नी को दी गई है वहां ऐसा किया जाना डिक्री या आदेश की, यथास्थिति, पूर्णतः या भागतः, तुष्टि होगा ।

(4) डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए किसी आवेदन के लिए हेतु जिसका किया जाना उपनियम (2) के खण्ड (क) द्वारा वर्जित है, परिसीमा काल की संगणना में उस समय को अपवर्जित किया जाएगा जिसके दौरान उस उपनियम में निर्दिष्ट कार्यवाहियां विचारण न्यायालय में लम्बित थीं ।

स्पष्टीकरण - इस नियम के प्रयोजनों के लिए, उस समय की संगणना करने में, जिसके दौरान दाण्डिक कार्यवाही विचारण न्यायालय में लम्बित थी, उस दिन को जब कार्यवाहियां चलाई गई थी और उस दिन को जब वे विचारण न्यायालय में समाप्त हुई, दोनों को, गिना जाएगा ।"

एच० आर० खन्ना
- - - अध्यक्ष

एस० एन० झंकर
- - - सदस्य

पी० एम० बख्शी
- - - - सदस्य-सचिव

नई दिल्ली
15 मई 1978

परिशिष्ट ।

हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, धारा 24-25 के उद्धरण

वाद लम्बित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय।

24. जहां कि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत हो कि यथास्थिति, पति या पत्नी को ऐसी कोई स्वतन्त्र आय नहीं है जो उसके संभाल और कार्यवाही के आवश्यक तथ्यों के लिए पर्याप्त हो वहां वह पति या पत्नी के आवेदन पर प्रत्यर्थी को यह आदेश दे सकेगा कि वह अर्जीदार को कार्यवाही में होने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान में प्रतिमास ऐसी राशि संदत्त करे जो अर्जीदार की अपनी आय तथा प्रत्यर्थी की आय को देखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत हो ।

स्थायी निर्वाह व्यय और भरण - पोषण ।

25.(1) इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई भी न्यायालय, डिक्री पारित करने के समय या उसके पश्चात् किसी भी समय, यथास्थिति पति या पत्नी द्वारा इस प्रयोजन से किए गए आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि प्रत्यर्थी, जब तक आवेदक या आवेदिका अविवाहित रहे तब तक उसके भरण - पोषण और संभाल के लिए ऐसी कुल राशि या ऐसी मासिक अथवा कालिक राशि, जो के प्रत्यर्थी की अपने आय और अन्य संपत्ति को, यदि कोई हो, आवेदक या आवेदिका की आय और अन्य सम्पत्ति को तथा पक्षकारों

के आचरण को देखते हुए न्यायालय को न्याय संगत प्रतीत हो, आवेदक या आवेदिका के जीवनकाल से अनधिक अवधि के लिए संदत्त करे और ऐसी कोई भी संदाय, यदि यह करना आवश्यक हो तो, प्रत्यर्थी की स्थावर संपत्ति पर भार द्वारा प्रतिभूत किया जा सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् पक्षकारों में से किसी की भी परिस्थितियों में तब्दीली हो गई है तो वह किसी भी पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसी रीति से जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ऐसे किसी आदेश में फेरफार कर सकेगा या उसे उपान्तरित अथवा विखण्डित कर सकेगा ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उस पक्षकार ने जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है पुनर्विवाह कर लिया है या यदि ऐसा पक्षकार पत्नी है तो वह सतीत्वहीन नहीं रह गई है या यदि ऐसा पक्षकार पति है तो उसने किसी स्त्री के साथ विवाह बाह्य मैथुन किया है, तो वह उस आदेश को विखण्डित कर देगा ।

परिशिष्ट 2

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973, धारा 198 से उद्धरण

|वाह के विरुद्ध
पराधों के लिए
|शियोजन ।

198. (1) कोई न्यायालय भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 20 के अधीन दण्डनीय अपराध का संज्ञान ऐसे अपराध से व्यथित किसी व्यक्ति द्वारा किये गए परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं :

परन्तु —

(क) जहां ऐसा व्यक्ति अठारह वर्ष से कम आयु का है अथवा जड़ या पागल है अथवा रोग या अंग- शैथिल्य के कारण परिवाद करने के लिए असमर्थ है, या ऐसी स्त्री है जो स्थानीय रूढ़ियों और रीतियों के अनुसार लोगों के सामने आने के लिए विवश नहीं की जानी चाहिए, वहां उसकी ओर से कोई अन्य व्यक्ति न्यायालय की इजाजत से परिवाद कर सकता है ;

... ...

(ग) जहां भारतीय दण्ड संहिता की धारा 494 के अधीन दण्डनीय अपराध से व्यथित व्यक्ति पत्नी है वहां उसकी ओर से उसके माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र या पुत्री या उसके पिता या माता के भाई या बहिन द्वारा परिवाद किया जा सकता है ।

... ...

(3) जब उपधारा (1) के परन्तुक के उपखण्ड (क) के अधीन आने वाले किसी मामले में अठारह वर्ष से कम आयु के व्यक्ति या पागल व्यक्ति की ओर से किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा परिवाद किया जाना है जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा अवयस्क या पागल के शरीर का संरक्षक नियुक्त या घोषित नहीं किया गया है, और न्यायालय का समाधान हो जाता है कि ऐसा कोई संरक्षक है जो ऐसे नियुक्त या घोषित किया गया है तब न्यायालय इजाजत के लिए आवेदन मंजूर करने के पूर्व, ऐसे संरक्षक को सूचना दिलवायेगा और उसे सुनवाई का उचित अवसर देगा ।

---- ---- ----

---- ---- ----

---- ---- ----

(7) इस धारा के उपबन्ध किसी अपराध के दुष्प्रेरण या अपराध करने के प्रयत्न को ऐसे लागू होंगे, जैसे वे अपराध को लागू होते हैं ।

परिशिष्ट 3

केलिफोर्निया पेनल कोड[1] से उद्धरण

"270. संतान के लिए आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध करने में लोप ।

कदाचार । धर्मज या अधर्मज अवयस्क संतान का पिता, जो अपनी संतान के लिए आवश्यक कपड़े, भोजन, आश्रय या चिकित्सीय परिचर्या अथवा अन्य उपचारी देखरेख उपलब्ध करने में विधिपूर्ण प्रतिहेतु के बिना जानबूझ कर लोप करेगा, कदाचार का दोषी होगा और एक हजार डालर (1,000$) से अनधिक के जुर्माने से या एक वर्ष से अनधिक के लिए काउन्टी जेल में कारावास से अथवा ऐसे जुर्माने और कारावास दोनों से दण्डनीय होगा । यदि वह पिता, ऐसे अतिक्रमण के दौरान 30 दिन तक राज्य से बाहर रहेगा या यदि वह सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के ऐसे आदेश का पालन करने में असफल होता या उससे इन्कार करेगा जिसमें उससे अपेक्षा की गई हो कि वह ऐसी अवयस्क संतान के भरण पोषण, संभाल, चिकित्सीय उपचार या अन्य उपचारी देख रेख के लिए कोई व्यवस्था करे और वैसा किए बिना 10 दिन तक राज्य से बाहर रहेगा तो वह महापराध का दोषी होगा ।" ----(धारा का आगे का भाग सुसंगत नहीं है)।

---

1. केलिफोर्निया पेनल कोड, धारा 270 और 270क ।

... 1958 का धारा 14(2), 15(3) और 15(6) से तुलना कीजिए ।

270 क. पत्नी का संपालन न करना प्रत्येक पति जो अपनी पत्नी के संपालन की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त रूप से योग्य है, या जो ऐसी पत्नी के संपालन के साधन उपार्जित करने के योग्य है, जो अपनी पत्नी को निराश्रित दशा में जानबूझकर परित्यक्त कर देगा या छोड़ देगा अथवा जो ऐसी पत्नी के लिए आवश्यक भोजन, कपड़े, आश्रय या चिकित्सीय परिचर्या उपलब्ध करने से इन्कार करेगा या उसमें उपेक्षा करेगा वह उस दशा के सिवाय जब कि पत्नी के अवचार से उसका उसे परित्यक्त करना न्यायोचित है कदाचार का दोषी होगा । - एडेड्स 1957, चैप 1855 ।"

क. [illegible]